आप वहीं से शुरुआत करें जहां आप खड़े हैं। यही वजह है कि स्वयं को जानना इतना ज़रूरी है – स्वयं के बारे में पूरी जानकारी होना, दूसरों से ली गयी जानकारी नहीं, मनोवैज्ञानिकों और मस्तिष्क विशेषज्ञों से ली गयी जानकारी नहीं, बल्कि स्वयं ही यह समझना कि हम क्या हैं। क्योंकि आप ही मनुष्यजाति की कहानी हैं... अगर आप उस पुस्तक को जो कि आप स्वयं हैं पढ़ना जान जाते हैं तो आप मानवजाति के समस्त क्रियाकलापों को, उसकी बर्बरताओं और मूर्खताओं को जान लेंगे क्योंकि आप ही पूरा संसार हैं।

जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद
मार्च 2008
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया का त्रैमासिक हिंदी पत्र
मार्च, जून, सितंबर एवं दिसंबर में प्रकाशित
वार्षिक शुल्कः रु. 100.00 आजीवन शुल्कः रु. 1000.00
संपादक : कृष्णनाथ
सहसंपादक : मुकेश

इस अंक में:

खंड : 1

किसी भी चीज़ को समस्या मत बनाइये 4
आपको कैसे मालूम कि जो आप कह रहे हैं वह सही है? 13
वह क्या है जो हमें ऊर्जाहीन बनाता है? 19
तथ्य के साथ जीना 24
कृष्णमूर्ति स्वयं से 26

खंड : 2

नये प्रकाशन 30

संपादकीय

कृष्णजी बार–बार कहते हैं कि किसी चीज़ को समस्या मत बनाइये। हम इसे सुनते हैं, पढ़ते हैं; फिर भी हम हर चीज़ को समस्या बनाने से बाज़ नहीं आते! यह क्या है? क्यों है? कभी आपने अपने से पूछा? दूसरों से नहीं। दूसरों के दोष देखने में तो हम सब माहिर हैं। कभी अपने मन की अंधेरी बंद गुफाओं में प्रवेश कर देखें, तो कैसा? हां, इसे भी समस्या न बनाएं!

खंड दो सूचनाओं का है। इसे हम तगड़ा बनाना चाहते हैं। यह *लिंक* या अन्य 'न्यूज़ लैटर' से अनुवाद कर कर नहीं। हिंदी भाषी क्षेत्रों से सीधे हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखे समाचार से इसे परिपूरित करना चाहेंगे। आभारी होंगे, यदि आप इसमें सहकार करें।

कृपया इसे भी समस्या न बनाएं...

–संपादक

किसी भी चीज़ को समस्या मत बनाइये!

कृष्णमूर्ति (कृ.) : देखिए, सर, जैसे कि मैं ईर्ष्यालु हूं – ईर्ष्या यानी माप–तौल, ईर्ष्या यानी तुलना। होता क्या है कि इसे बदल देना चाहने की और इसे समस्या बना लेने की पूरी की पूरी मशीनरी हरकत में आ जाती है, और इसलिए मैं इस ईर्ष्या के बारे में कुछ–न–कुछ करने की कोशिश में जुट जाता हूं; और मेरा मस्तिष्क बरसों से इस सब के लिए प्रशिक्षित होता रहा है।

पी. एन. श्रीनिवास (पी.) : हां।

कृ. : सही है? तो मैं ईर्ष्या को एक समस्या बना लेता हूं। अब, क्या मैं इस मशीनरी को रोक सकता हूं जो समस्या बना लिया करती है? और सिर्फ इस तथ्य को देख सकता हूं कि मुझे ईर्ष्या हो रही है? यहां तक आइए, तब हम चर्चा कर सकते हैं कि क्या होता है। लेकिन अगर आप इस बिंदु तक नहीं आते, तो हम चर्चा नहीं कर पाएंगे। यह बात कितनी तर्कसंगत, विवेकपूर्ण है, इसमें मुश्किल क्या है?

पुपुल जयकर (पु.) : क्या वह मशीनरी रुक सकती है?

कृ. : यह हम पता लगाने जा रहे हैं। क्या यह मशीनरी रुक सकती है? आप इनके प्रश्न को समझे? आप क्या कहेंगे?

पी. : पहले मैं आपको कुछ बताना चाहूंगा : मुझे अभी आपसे ईर्ष्या हो रही है।

कृ. : आपको ईर्ष्या हो रही है?

पी. : हां। और मेरी ईर्ष्या जब मेरे चेहरे से ज़ाहिर होने लगती है, तो मैं इसे छिपाता हूं क्योंकि मैं आपको इसका पता नहीं लगने देना चाहता।

कृ. : बिलकुल।

पी. : तो क्या होता है? ऐसा करना ही अपने आप में इसे न देखने

की क्रिया बन जाता है, इसलिए मुझे अपनी ईर्ष्या आपके सामने प्रकट होने देनी चाहिए।

कृ. : हां, यही तो। आप समझे? मुझे ईर्ष्या हो रही है और मैं इसे प्रकट होने देता हूं, और मुझे अचानक एहसास होता है कि वह सारी मशीनरी हरकत में आ गयी है। अब पुपुल जी ने यह प्रश्न उठाया है : क्या वह मशीनरी रुक सकती है?

प्रश्नकर्ता 3 : जो इस ईर्ष्या और जलन की मशीनरी को बाहर से देख रहा है, उसके बारे में आप क्या कहते हैं?

कृ. : 'बाहर से' जैसा कुछ नहीं है। आपका मन उस ढंग से प्रशिक्षित है। यह एक तथ्य है, है कि नहीं? आपके मन को समस्याओं का हल निकालने के लिए शिक्षित किया गया है, ऐसा ही प्रशिक्षण उसे मिला है। आप यह मानते हैं?

प्रश्नकर्ता 3 : मैं यह मानता हूं।

कृ. : तो क्या आप उस मशीनरी को रोक सकते हैं? यह मत पूछिये, ''इसे रोकने वाला कौन है?'' इसे समस्या मत बनाइये। आप यह देख पा रहे हैं?

प्रश्नकर्ता 3 : क्या हमें बस यही देखना होगा?

कृ. : रुकें ज़रा, इस पर चर्चा करें। मैं वह मशीनरी हूं जिसे समस्याएं हल करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है, तमाम ज़िंदगी, जब तक मैं मरूं नहीं – शतरंज की समस्याएं, यांत्रिक समस्याएं, गणित की समस्याएं। अब मैं अपने आप से पूछता हूं, क्या यह मशीनरी रुक सकती है? अगर मैं कहता हूं कि इसे रुकना चाहिए तो मैं इसे एक समस्या बना लेता हूं। तब मैं कहने लगता हूं,'' मैं इसे कैसे रोकूं?'' मैं संकल्प का और तमाम ऐसी बातों का सहारा लेता हूं। और मुझे एहसास होता है कि मैं इसे समस्या बना रहा हूं – इस *रोकने* को। पुपुल जी ने एक बहुत अच्छा प्रश्न पूछा, जैसा कि हम कल कह रहे थे, ''क्या हम इस मशीनरी को रोक सकते हैं?'' बिना इसकी भी समस्या बनाए?

प्रश्नकर्ता 5 : उन्होंने पूछा था, ''क्या यह मशीनरी रुक सकती है?'' यह नहीं कि क्या ईर्ष्या करना रुक सकता है।

कृ. : हां। मैं उसी बात पर आ रहा हूं। मेरा सरोकार सिर्फ इस मशीनरी को रोकने से है। और मैं कहता हूं कि मैं इसे समस्या नहीं बनाऊंगा – कैसे, क्यों, इसे दबाना है, इससे भागना है, इसके पार जाना है, या किसी गुरु या आप जैसे लोगों के पास जाना है जो बता दें कि इसे कैसे रोकना होगा। बिना यह सब किये, जो समस्या खड़ी करेगा, मैं इस मशीनरी को हरकत में आते देख रहा हूं। तो इस बात का साफ पता चलता है कि मस्तिष्क को, मन को समस्याएं हल करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है। यह एक तथ्य है।

प्रश्नकर्ता 1 : यह संघर्ष एक तथ्य है।

कृ. : यह एक तथ्य है।

पु. : लेकिन देखिये, अंत करने की समस्या तो है।

कृ. : मैं इसका अंत नहीं कर रहा हूं।

पु. : ईर्ष्या मौजूद है। जिस क्षण आप ईर्ष्या की समस्या को हल करने की कोशिश से हटकर उस मशीनरी की हलचल के अवलोकन की ओर...

कृ. : वह तथ्य है।

पु. : तथ्य है, पर उस परिवर्तन को देखिए जो घटित हुआ है। वह बोध...

कृ. : नहीं, नहीं, बोध शब्द का प्रयोग मत कीजिये। देखिए, यह इसे केवल और जटिल बना देगा।

पु. : एक भाव मेरे भीतर जागता है, जिसे मन तुरंत ईर्ष्या के रूप में अंकित कर लेता है। अब अगली घटना आम तौर से होती है कि इससे मुक्ति कैसे हो। जो कि समस्या–निर्माण है।

कृ. : हां, समस्या–निर्माण है।

पु. : यह उठेगा ही, यह प्रश्न।

कृ. : बिलकुल। हमने यह सब देखा है।

पु. : इस प्रश्न के उठने का अवलोकन ही उस मशीनरी का अवलोकन है।

कृ. : तो इस तथ्य को देखना कि मुझे ईर्ष्या हो रही है, मुझे इस मशीनरी के हरकत में आने को भी दिखा देता है। मतलब कि दोनों तथ्य हैं।

पु. : दोनों तथ्य हैं।

कृ. : एक क्षण ठहरें, यहां रुक जाएं। दोनों तथ्य हैं, ठीक है? तो मुझे करना क्या होगा? बताइये। क्या सूरज का उगना और सूरज का डूबना समस्या है?

पी. : नहीं, यह तो तथ्य है। इसके बारे में आप कुछ नहीं कर सकते।

कृ. : आपको इसका एहसास अभी हुआ है? रुकिये, आप कुछ चूक रहे हैं।

पु. : मैं कुछ कहूं? इस मशीनरी का अवलोकन ही, इस मशीनरी के अवलोकन की अवस्था में जो क्रिया घटित होती है, एक ऐसी क्रिया है जो न तो इसे बदलने की कोशिश कर रही है और न ही इसे कोई समस्या बना रही है। पता नहीं मैं इसे सम्प्रेषित कर पा रही हूं या नहीं।

कृ. : मुझे कहने दें तो आप इसे थोड़ा कठिन बनाए दे रही हैं, मैं इसे जितना मुमकिन हो उतना सरल रखना चाहता हूं। आप ईर्ष्याग्रस्त हैं, यह तथ्य है। क्या आपका मन इस तथ्य का समाधान करने की कोशिश कर रहा है?

पी. : नहीं, मैं इस तथ्य के समाधान की कोशिश नहीं कर रहा हूं।

कृ. : अगर ऐसा नहीं हो रहा है, तो वह मशीनरी हरकत में नहीं हैं।

पी. : हां।

कृ. : रुकिये, थोड़ा धीमे चलिये। इस मसले को मैं इतना जटिल क्यों बना लेता हूं, मैं ऐसा नहीं करना चाहता। आपको मुझसे, या किसी अन्य से ईर्ष्या हो रही है, आप इस सब के निहितार्थ को, मतलब को जानते हैं। तो आपको क्या यह भान है कि अब आपकी मशीनरी इसे हाथ में लेने जा रही है?

पी. : हां।

कृ. : यानी कि आप इसे समस्या बना रहे हैं।

पी. : हां।

कृ. : क्यों?

पी. : क्योंकि मैं इस ईर्ष्या को प्रकट होते समय देखने में असमर्थ रहता हूं।

कृ. : नहीं! आपको 'अ' से ईर्ष्या हो रही है और वह मशीनरी जिसके साथ आप रहते चले आये हैं आ धमकती है और इसे हाथ में ले लेती है और तब इसे समस्या बना लेती है। क्या आपको इस गतिविधि का, हलचल का भान है, सिर्फ इसका?

पी. : हां।

कृ. : ठीक? अब, यह गतिविधि एक तथ्य है। थोड़ी देर के लिए ईर्ष्या को एक तरफ रहने दें।

पी. : यह गतिविधि महत्त्वपूर्ण है।

कृ. : जब आप तथ्य को देखते हैं तो यह गतिविधि, जिसे समस्याएं हल करना सिखाया गया है, प्रशिक्षित किया गया है, चालू हो जाती है। सही है? अब अगला सवाल है : क्या यह मशीनरी रुक सकती है? यह सहज–स्वाभाविक रूप से तभी रुक सकती है जब आपको यह एहसास हो जाए कि यह मशीनरी समस्या हल करने की मशीनरी है और तब आप तथ्य को टाल रहे हैं।

पी. : हां।

कृ. : आपको यह समझ में आया? बात साफ हुई? देखिये, सर, आपको ईर्ष्या हो रही है। आप जानते ही हैं कि ईर्ष्या क्या है – माप–जोख, तुलना वगैरह। और क्या आपको इस मन की गतिशीलता का, हलचल का एहसास है जो ज़िंदगी को हमेशा समस्या के तौर पर लेते हुए सोचा करता है? और आप इसे भी समस्या बना लेते हैं।

पी. : हां।

कृ. : ठीक? क्या आपको एहसास है कि यह गतिविधि एक तथ्य है?

पी. : हां।

कृ. : यह एक तथ्य है। अब, क्या आप इस तथ्य को देख सकते हैं बिना इसे...

पी. : एक और समस्या बनाए?

कृ. : एक और समस्या। तो सिर्फ तथ्य को देखना है, ठीक है?

पी. : मैंने कई मर्तबा ऐसा किया है, लेकिन यह तो जारी रहता है।

कृ. : नहीं, आपने ऐसा किया नहीं है। क्या आपने इसे एक तथ्य की तरह देखा है? जैसे इस तार से गुज़रती हुई बिजली एक तथ्य है।

पी. : हां।

कृ. : तो यह गतिविधि एक तथ्य है, और ईर्ष्या एक तथ्य है। पर आप इस मशीनरी को रोकना चाहते हैं, और यह भी एक समस्या बन जाता है।

पी. : हां। ईर्ष्या से भी ज़्यादा।

कृ. : तो अब आपके सामने दो समस्याएं होती हैं। और ज़िंदगी दर्जनों समस्याएं इस तरह से खड़ी करती रहती है। अब मैं यह पूछ रहा हूं : क्या इस गतिविधि का अंत संभव है – इस गतिविधि का

जिसके लिए आपको प्रशिक्षित वगैरह किया गया है – बिना इसे एक समस्या बनाए?

पी. : हां।

कृ. : यानी कि?

पी. : इस गतिविधि को देखना।

कृ. : आपने इसे देख लिया है।

प्रश्नकर्ता 3 : जिस पल मैं इसे देखता हूं, यह समाप्त हो जाती है।

कृ. : क्या आपमें यह समाप्त हो गयी है?

प्रश्नकर्ता 3 : नहीं।

कृ. : यदि आपके साथ ऐसा नहीं हुआ है तो यह सब मत कहिये।

प्रश्नकर्ता 1 : जब आप इस मशीनरी के प्रति सजग होते हैं, तो यह रुकती तो है, पर तब आप ऐसी अवस्था में पहुंच जाते हैं जब आपको पता नहीं होता है, और फौरन आप वापस वहीं...

कृ. : क्यों आप ऐसा करते हैं? कल हमने इस पर चर्चा की थी। एक साइनबोर्ड लगा है जो कहता है, ''इस तरफ बड़ा ख़तरा है, गहरी खाई है, सावधान रहिये, इससे दूर रहिये।'' आप उस सूचना को पढ़ते हैं, फिर भी उस ख़तरे की तरफ चलते रहते हैं। आप ऐसा क्यों करते हैं?

पी. : क्योंकि आपको मालूम नहीं है, आप सोचते हैं यही एकमात्र रास्ता है।

कृ. : लेकिन वह आदमी बता रहा है कि वहां ज़िंदगी को ख़तरा है, उस तरफ मत जाइये।

पी. : आप सोचते हैं कि वह ज़्यादा जोखिम का रास्ता हैं।

कृ. : कौन सा? यह वाला?

पी. : नहीं, वह दूसरा रास्ता जो वह आदमी बता रहा है।

कृ. : क्या आप सब नासमझ हैं? आपके साथ मामला क्या है? यदि आप उस गतिविधि को बीच में नहीं लाते हैं, तो आप तथ्यों को देख सकते हैं, देख सकते हैं कि क्या होता है। पर आप ऐसा नहीं करते।

पी. : मुझे इस बारे में पक्का नहीं है, हम यह नहीं कह सकते कि हम ऐसा नहीं करते हैं।

कृ. : मैं यह कह रहा हूं कि मेरे मन को समस्याएं हल करने हेतु प्रशिक्षित किया गया है, शिक्षित, संस्कारित किया गया है – जो भी शब्द आप इस्तेमाल करना चाहें। यह एक तथ्य है। अब, क्या मैं उस तथ्य को देख सकता हूं, उसे समाप्त करने की, रोकने की, दबाने की, उससे भागने की या इस किस्म की कोई और कोशिश किये बिना? इसे देखना – यह नहीं कि देखने वाला कौन है, वह क्यों देखता है और इस तरह की तमाम बातें। बस इसे देखना, क्या आप ऐसा कर सकते हैं?

पी. : हां।

कृ. : बिलकुल कर सकते हैं।

पी. : जैसे हम सूर्यास्त को, सूर्योदय को देखते हैं।

कृ. : हां, आप इसे देखते हैं। यह ऐसा है। तो क्या यह रुक सकता है? जब आप ईर्ष्या को देखें, जब वह एहसास जागे, तो इस मशीनरी को बीच में न आने दें। न 'आने दें' – आप समझ रहे हैं? मैं यह दोहरा–दोहरा के थक गया हूं।

पी. : हां, यह बिलकुल स्पष्ट है।

कृ. : स्पष्ट किस मायने में? कि आपको एहसास है कि यह मशीनरी ही असली दिक्कत है, वह तथ्य दिक्कत नहीं है।

पी. : हां, यह उस तथ्य से बड़ी समस्या है।

कृ. : मैं ही सब कहे दे रहा हूं। आपके मन को क्या हुआ है? यह मशीनरी ही असल दिक्कत है, तथ्य नहीं। तो अगर इससे दिक्कत खड़ी होती है, अगर आप भीतर से यह महसूस कर लेते हैं या यह

तथ्य देख लेते हैं कि यह दिक्कत खड़ी किया करती है, तो आप कहते हैं, 'यही है' और मामला निपट जाता है। अगर आपके दफ्तर में कोई ऐसा व्यक्ति है जो समस्या उत्पन्न करता है तो आप उससे बात करते हैं, उसे कहते हैं, ''दिक्कत न खड़ी करें''। आप उसे एक मौका देते हैं, दूसरा मौका देते हैं, तीसरा मौका देते हैं, और फिर कह देते हैं, ''जनाब, आप चलते बनिए।'' तो क्या आप दिक्कत पैदा करने वाले को एक तथ्य की तरह देखते हैं, और यह नहीं कहते कि ''मुझे इसका हल निकालना होगा, मुझे इस बारे में कुछ करना होगा''? दिक्कत खड़ी करने वाला यही सब है। फिर आप ईर्ष्या को देखें, तब क्या होता है? वह समस्या नहीं रहती। आपका क्या कहना है? क्या आप इसे समझ पा रहे हैं? सिर्फ शब्द ही शब्द नहीं, बल्कि यह एहसास कि जीवन में कोई भी बात समस्या न बन पाए।

—'डोंट मेक अ प्रॉब्लम ऑफ ऐनीथिंग' अध्याय 6

अनुवाद : शक्ति कुमार

आपको कैसे मालूम कि जो आप कह रहे हैं वह सही है?

आप मुझसे यह सवाल क्यों कर रहे हैं? क्या यह सच नहीं है कि जब तक राष्ट्रीय, आर्थिक, प्रजातीय और धार्मिक विभाजन हैं, द्वंद्व का होना तय है। यह एक तथ्य है। ठीक? क्या आप इससे सहमत हैं? यह सच इसलिए नहीं कि मैं कह रहा हूं, बल्कि यह अपने में ही एक तथ्य है।

तथ्य स्वयं ही सच्चाई बयान करते हैं। जैसे कि हमने हाल में संबंध के बारे में कहा कि जब तक दो इंसानों के बीच मानसिक स्तर पर भेद है, द्वंद्व का होना स्वाभाविक है। यह एक हकीकत है। बात मेरे कहने की नहीं है, मुझे कैसे मालूम कि मैं जो कह रहा हूं वह सही है, पर यह एक सच्चाई है कि जब तक मैं महत्त्वाकांक्षी हूं, अपने सुख के पीछे भाग रहा हूं, अपनी तुष्टि पाने में लगा हूं और मेरी पत्नी, मेरा पति या मेरी महिला दोस्त भी यही करने में लगे हैं, तो हम द्वंद्व से बच नहीं सकते। यह तथ्य है।

बात यह नहीं है कि मुझे कैसे मालूम कि सच्चाई क्या है। सबसे पहले तथ्यों को देखें। हम लोग पूर्वाग्रह से खासे ग्रस्त हैं। हम ढेरों पूर्वाग्रहों को ढोए रहते हैं, उन्हें पोषित करते हैं, आम राय बनाकर उन्हें मज़बूत करते हैं और इस प्रकार औरों को समझने में हमारे पूर्वाग्रह बाधा बनते हैं। ठीक? यह एक सच्चाई है। अब पूर्वाग्रहों से, मतों से, खास विचारों से जिन्होंने हमारी ज़िंदगी में गहरी पैठ बना ली है मुक्त होना क्या संभव है? अब सवाल उठता है कि पूर्वाग्रहों से कैसे आज़ाद हुआ जाए? इस पर हम चर्चा कर सकते हैं। इस बारे में बातचीत हो सकती है, संवाद हो सकता है, कि देखिए मेरे अपने पूर्वाग्रह हैं, आपके अपने, ऐसा मानकर चलते हैं, और ये पूर्वाग्रह चाहे वे आदर्शवादी हों, पूंजीवादी हों,

सर्वाधिकारवादी हों या धार्मिक, वे सब लोगों को बांटते हैं। ठीक है न? यह एक सीधी सी बात है। जहां विभाजन है वहां द्वंद्व होगा ही : जैसे कि अरब और यहूदी, इस्लाम और बाकी दुनिया; ऐसे लोग जो बेहद संकीर्ण, मतांध हैं और जो नहीं हैं, उनके बीच तो लड़ाई होनी ही है। यह कोई निजी राय नहीं बल्कि एक सच्चाई है।

सवाल यह नहीं है कि मैं कैसे जानता हूं कि मैं जो कह रहा हूं वह सच है, बल्कि हम तो केवल तथ्य को देख रहे हैं। अब देखना यह है कि तथ्य क्या है? आपको क्या लगता है, तथ्य होता क्या है? एक घटना जो पहले घट चुकी है, कोई कार एक्सीडेंट, वह एक तथ्य है। या फिर यहां बैठे हुए, अभी क्या हो रहा है, यही तथ्य है, हकीकत है। लेकिन भविष्य में जो होगा वह तथ्य नहीं हो सकता है। तो, तथ्य का मतलब है जो बीत चुका है : कल सड़क पर चलते हुए एक सांप दिखाई दिया पर उसने मुझे काटा नहीं। यह एक हकीकत है। और जो अभी हो रहा है, मैं जो कुछ सोच रहा हूं, कर रहा हूं, वह हकीकत है। और मैं जो करूंगा वह हकीकत नहीं भी हो सकता है। वह घट भी सकता है और नहीं भी।

तो अगर हम तथ्य के बारे में स्पष्ट हैं, तब फिर विचार क्या है? आप समझ रहे हैं? क्या विचार तथ्य है? ग्रीक या लैटिन भाषा में 'आयडिया' यानी विचार शब्द का अर्थ होता है 'देखना'। इस शब्द का मूल अर्थ है देखना, महसूस करना, अवलोकन करना। हम एक तथ्य को देखते हैं, उसके बारे में कल्पना करते हैं, और उस विचार या कल्पना को मानकर चलते हैं। इसका अर्थ है कि तथ्य हमेशा मौजूद रहता है लेकिन उस तथ्य से हम कोई निष्कर्ष निकाल लेते हैं। तथ्य को समझने के बजाय हम उस तथ्य और उससे निकाले गये निष्कर्ष को मान कर बैठ जाते हैं। क्या मैं स्पष्ट कर पा रहा हूं? इसलिए बात यह नहीं है कि मुझे कैसे मालूम कि मैं जो कह रहा हूं वह सच है या नहीं।

वक्ता तो तथ्य की ओर केवल संकेत कर रहा है। ये तथ्य व्यक्तिगत कतई नहीं हैं। अगर मैं अपने को हिंदू कहता हूं और इस पर कायम रहता हूं, तो यह एक तथ्य है। चाहे यह एक भ्रम हो, या किसी तरह के अंधविश्वास पर आधारित भावुकतापूर्ण बकवास, वह सब तथ्य है। आप यह समझ पा रहे हैं? तथ्य एक भ्रम भी हो सकता है और हकीकत भी। लेकिन हममें से ज्यादातर भ्रम के साथ जीते हैं।

मैं भारतीय हूं जो कि एक भ्रांति है। और मैं अगर बहुत ही विनम्रतापूर्वक कह सकूं, आप ब्रिटिश हैं – तो, यह भी एक भ्रांति है। अलगाव और विभाजन पर आधारित यह देशभक्ति पूरी दुनिया को तबाह कर रही है। यह हकीकत है। जब तक मैं अपने को अरब माने हूं और आप अपने को कुछ और तो मैं आपके विनाश के लिए तैयार रहूंगा क्योंकि मैं इस विश्वास से बंधा हूं कि आपको खत्म कर देने पर मुझे स्वर्ग मिलेगा। ठीक है? यह भ्रांति है जिसे उन्होंने तथ्य माना हुआ है और इस भ्रांति के वास्ते वे मरने और मारने को तैयार हैं। इसलिए क्या हम तथ्य के साथ हमेशा बने रह सकते हैं?

मेरा प्रश्न है : क्या हम सदा तथ्य के साथ रह सकते हैं, न कि अपने पूर्वाग्रहों, विश्वासों, और बेसिरपैर की भ्रांतियों के अनुसार उनको बदलते जाना, उनकी व्याख्या करते जाना, भले ही वे भ्रांतियां कितनी ही महान क्यों न हों?

क्या मैं इन तथ्यों का अवलोकन कर सकता हूं और यह समझ सकता हूं कि ये क्या कह रहे हैं? फर्ज कीजिए मेरे साथ कार दुर्घटना होती है। क्या मैं इस तथ्य को देख सकता हूं कि शायद मैं कुछ ज्यादा लापरवाह हो गया था, काफी तेज रफ्तार से गाड़ी चला रहा था, मैं जो कर रहा था उसमें मेरा पूरा ध्यान नहीं था क्योंकि मैं बगल में बैठे अपने दोस्त से बात करने में लगा हुआ था – यह एक तथ्य है। पर मैं यह कहने लगता हूं, 'यह उसकी

ग़लती है', आपको तो मालूम ही है, हमेशा 'दूसरा ही बेवकूफ होता है।' अब यह हकीकत है कि हम आदर्शों से घिरे हैं। सही है? क्या आप सबके अपने–अपने आदर्श नहीं हैं? नहीं?

काश हमारे बीच संवाद हो पाता, दोस्त की तरह हम बातचीत कर पाते। क्या आपके अपने आदर्श नहीं हैं? मुझे लगता है ज़रूर होंगे। वे कौन से आदर्श हैं? क्या वे हकीकत हैं? यह आदर्श कि हमें शांतिपूर्वक जीना है। ठीक है? यह आदर्श कि हमें अहिंसक होना है। या साम्यवादी आदर्श जिन्हें ऐतिहासिक अध्ययनों से खोज निकाला गया है पर वे अध्ययन मेरे संस्कारों से ग्रसित हैं। तो फिर हमारे पास आदर्श होते ही क्यों हैं? मुझे पता है यह कहना ख़तरनाक है क्योंकि हममें से ज़्यादातर लोग शानदार आदर्शों के साथ जीते हैं। हम इस पर सवाल उठा रहे हैं, मैं यह नहीं कह रहा कि आपके आदर्श होने चाहिए या नहीं होने चाहिए। मैं कह रहा हूं कि हमारे पास आदर्श, आस्था, मान्यताएं क्यों होती हैं, एक ईसाई, बौद्ध या एक अमेरिकी या ब्रिटिश होने के नाते। क्यों? क्या ऐसा है कि हमारे मस्तिष्क भ्रांति के बग़ैर जी ही नहीं सकते? इस बारे में आपका क्या कहना है?

क्या मेरा मस्तिष्क सक्षम है, स्वस्थ है, जीवंत है, चीज़ें जैसी हैं उनको वैसा समझ पाने के लिए, न कि भविष्य के आदर्श खड़े करने के लिए? आदर्श का कोई अस्तित्व ही नहीं है। ठीक? ... इस तरह यह चलता आ रहा है। और क्या हमें इस बात का एहसास है कि किसी भी तरह का आदर्श, विश्वास और आस्था मानव को आपस में बांटते हैं? यह एक तथ्य है।

तो क्या हम आदर्शों और विश्वासों से, और किसी एक समूह के साथ पहचान बनाने और किसी दूसरे के खिलाफ होने से, जो किसी और के साथ अपनी पहचान बनाए है, स्वतंत्र हो सकते हैं? आप समझ रहे हैं न? इस सबसे मुक्त होइये। क्या ऐसा किया

जा सकता है? या यह नामुमकिन है? यदि हम इस बारे में संवाद कर सकें तब हम कुछ आपस में तय कर सकेंगे कि यह संभव है, या यह संभव नहीं है, या फिर यह क्यों संभव नहीं है? समझ रहे हैं न आप? क्या अभी हम यह कर सकते हैं? एक स्वतंत्र मन और स्वतंत्र मस्तिष्क का होना जो कूड़े–कचरे और तमाम तरह की भ्रांतियों से भरा न हो। क्या ऐसा संभव है?

आपमें से कुछ लोग ऐसा कह सकते हैं कि यह संभव नहीं है क्योंकि मैं अपनी मान्यताओं के बिना जी ही नहीं सकता। मेरे आदर्श, मेरे विश्वास तो होने ही चाहिए नहीं तो मैं कहीं का नहीं रहूंगा, मेरा कोई वजूद ही नहीं होगा... वैसे भी आप अपने आदर्शों, विश्वासों और मान्यताओं में अपना वजूद पहले ही खो चुके हैं। यह एक तथ्य है। आप बुरी तरह खो चुके हैं। लेकिन अगर हम आपस में संवाद कर सकें, बातचीत कर सकें और ऐसा कह सकें कि मैं क्यों अपने पूर्वाग्रहों, आदर्शों इत्यादि से चिपका हूं? क्यों मैं किसी भी चीज़ से अपनी पहचान बनाना चाहता हूं? समझ रहे हैं न आप?

इस पर विचार कीजिए। गहराई से पता लगाइये कि क्यों हम यह सब करते हैं। हमने क्यों ख़ुद को एक ढांचे में ढलने दिया है। क्यों हम 'लोग क्या सोचेंगे' इस बात से डरते हैं। तो, प्रश्न है कि आप कैसे जानते हैं कि आप जो कह रहे हैं वह सत्य है? मुझे तो लगता है इसका बहुत ही कम महत्व है। सत्य कोई रहस्यमय वस्तु नहीं है, आप जहां पर खड़े हैं सत्य वहीं है। वहां से हम शुरुआत कर सकते हैं। सत्य यह है कि मैं क्रोधी हूं, ईर्ष्यालु हूं, आक्रामक हूं, झगड़ालू हूं। यह हकीकत है।

इसलिए मैं बड़ी विनम्रतापूर्वक कहूंगा कि आप वहीं से शुरुआत करें जहां आप खड़े हैं। यही वजह है कि स्वयं को जानना इतना ज़रूरी है – स्वयं के बारे में पूरी जानकारी होना, दूसरों से ली गयी जानकारी नहीं, मनोवैज्ञानिकों और मस्तिष्क विशेषज्ञों से

ली गयी जानकारी नहीं, बल्कि स्वयं ही यह समझना कि हम क्या हैं। क्योंकि आप ही मनुष्यजाति की कहानी हैं। यह सब आप समझ रहे हैं न? अगर आप उस पुस्तक को जो कि आप स्वयं हैं पढ़ना जान जाते हैं तो आप मानवजाति के समस्त क्रियाकलापों को, उसकी बर्बरताओं और मूर्खताओं को जान लेंगे क्योंकि आप ही पूरा संसार हैं।

ब्रॉकवुड पार्क, प्रथम प्रश्नोत्तर सभा, 30 अगस्त 1983
अनुवाद : मुकेश

वह क्या है जो हमें ऊर्जाहीन बनाता है?

प्रश्न : आप अंतहीन सतर्कता की आवश्यकता के बारे में इतनी चर्चा करते हैं। मैं पाता हूं कि मेरा कार्य मुझे इस कदर निस्तेज, ऊर्जाहीन कर देता है कि दिन भर के कार्य के बाद सतर्कता के विषय में बात करना भी जले पर नमक छिड़कने के समान प्रतीत होता है।

कृष्णमूर्ति : महाशय, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। आइये, हम एक साथ ध्यानपूर्वक इसकी छानबीन करें और देखें कि इसके साथ और क्या जुड़ा है। अब, हममें से ज़्यादातर लोग जिसे हम अपना कार्य, पेशा, नियमित कर्म कहते हैं उसकी वजह से ऊर्जाहीन महसूस करते हैं। वे दोनों ही ऊर्जाहीन हैं – वे जो अपने कार्य को बहुत पसंद करते हैं, और वे भी जो ज़रूरत के लिए कार्य करने को बाध्य हैं और देखते हैं कि कार्य उन्हें ऊर्जाहीन बना देता है। वे जिन्हें अपना कार्य बहुत पसंद है और वे जो इसका प्रतिरोध करते हैं, दोनों ही निस्तेज हो जाते हैं, है न?

वह जिसे अपने कार्य से लगाव हो गया है, वह क्या करता है? वह सुबह से लेकर रात तक उसी के विषय में सोचता है, वह लगातार उसी में उलझा रहता है। उसका अपने कार्य से इस कदर तादात्म्य, जुड़ाव हो जाता है कि वह उसे देख नहीं पाता – वह स्वयं ही वह कर्म, वह कार्य है। और इस प्रकार के व्यक्ति के साथ क्या होता है? वह एक पिंजड़े में जीता है, वह अपने कार्य के साथ अलग–थलग जीता है। उस अलगाव में, हो सकता है वह बहुत चतुर, बहुत रचनात्मक, बहुत गूढ़ हो, परंतु फिर भी वह अलग–थलग होता है, वह ऊर्जाहीन हो जाता है क्योंकि वह अन्य सारे कार्यों, किसी भी और नज़रिये का प्रतिरोध कर रहा होता है। इस तरह उसका कार्य जीवन से पलायन का एक ज़रिया है – अपनी पत्नी से, अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारियों से, अनगिनत मांगों से और ऐसी

ही अन्य बातों से। और एक वह व्यक्ति है, दूसरी श्रेणी में, वह व्यक्ति, जो हममें से ज़्यादातर की तरह, वही करने को बाध्य है जिसका वह प्रतिरोध कर रहा होता है, जिसे वह करना नहीं चाहता। वह है कारखाने में काम करने वाला, बैंक में लिपिक, वकील या जो भी हमारे विभिन्न प्रकार के ऐसे कार्य हुआ करते हैं।

तो ऐसा क्या है जो हमें ऊर्जाहीन बना देता है? क्या वह कार्य ही है? या कार्य के प्रति हमारा प्रतिरोध, या अन्य प्रकार के प्रभावों से अपने आप को बचाने की हमारी चेष्टा? आप इस बात को समझ रहे हैं न? आशा है मैं इसे स्पष्ट कर पा रहा हूं। यानी एक तरफ वह व्यक्ति है जिसे अपने कार्य से बेहद लगाव है, जो उससे बेहद जुड़ा हुआ है, वह उससे इस कदर जुड़ा हुआ है कि यह उसके लिए एक लत, एक आदत बन गयी है। इस कारण अपने कार्य के प्रति उसका प्यार जीवन से बचने का एक ज़रिया है। और दूसरी तरफ वह व्यक्ति है जो अपने कार्य से बचना चाहता है, उसका प्रतिरोध करता है, जो चाहता है कि वह कुछ और कर रहा होता; उसके लिए जो वह कर रहा है, उसके प्रतिरोध का अंतहीन द्वंद्व चलता रहता है।

तो हमारी समस्या है कि क्या कार्य मन को निस्तेज, सुस्त बना देता है? अथवा ऐसी ऊर्जाहीनता इसलिए आती है कि या तो कार्य के प्रति हममें प्रतिरोध होता है, या फिर हम कार्य को जीवन के अन्य प्रभावों से बचने के ज़रिये के तौर पर इस्तेमाल करते हैं? यानी, क्या कार्य मन को निस्तेज बनाता है, या कि मन निस्तेज होता है बचने की प्रवृत्ति, अंतर्द्वंद्व, प्रतिरोध की वजह से? साफ ज़ाहिर है कि यह कार्य नहीं बल्कि प्रतिरोध, बचने की प्रवृत्ति है जो मन को ऊर्जाहीन बनाती है। अगर आपके अंदर कोई प्रतिरोध न हो और आप उस कार्य को स्वीकार कर लें तो क्या होता है? वह कार्य आपको ऊर्जाहीन नहीं बनाता क्योंकि आपके मन का केवल एक भाग ही उस कार्य में, जिसे आपको करना ही है, लगा होता है,

बाकी का आपका अस्तित्व, अवचेतन, अद्‌भुत रूप से संलग्न होता है उन विचारों में, जिनमें वास्तव में आपकी रुचि है। और इसीलिए द्वंद्व मौजूद नहीं होता। यह सुनने में शायद आपको काफी जटिल लगे, लेकिन अगर आप इसे ध्यानपूर्वक समझेंगे, तो आप देख पाएंगे कि मन ऊर्जाहीन कार्य से नहीं होता, अपितु कार्य के प्रति हमारे प्रतिरोध से या फिर जीवन के प्रति प्रतिरोध से होता है। जैसे उदाहरण के लिए आपको कोई कार्य विशेष करना है जिसमें शायद पांच या छः घंटे लगें। और अगर आप कहने लगें, ''यह कितना उबाऊ, कितना झंझट वाला काम है, काश मैं कुछ और कर रहा होता'', तो ज़ाहिर है आपका मन उस कार्य का प्रतिरोध कर रहा है। आपके मन का एक भाग चाह रहा है कि वह कुछ और कर रहा होता। यह अलगाव जो प्रतिरोध से उत्पन्न होता है, ऊर्जाहीनता लाता है, क्योंकि आप अपनी चेष्टा का व्यर्थ उपयोग कर रहे होते हैं, यह चाहते हुए कि काश आप कुछ और कर रहे होते।

अब अगर आप प्रतिरोध न करें, पर जो वास्तव में आवश्यक है वह करें, तब आप कहेंगे, ''मुझे अपनी जीविका कमानी है और यह जीविकोपार्जन उचित ढंग से करना है।'' परंतु सही जीविकोपार्जन का अर्थ सेना, पुलिस या वकालत के काम नहीं हैं, क्योंकि ये तो विवाद, अशांति, चालाकी, छल–प्रपंच आदि से पनपते हैं। यह अपने आप में एक कठिन समस्या है जिस पर हम बाद में चर्चा करेंगे, अगर समय रहा तो।

तो इस प्रकार अगर आप अपनी जीविका कमाने के लिए जो भी ज़रूरी है वह कर रहे हैं और साथ ही इसका प्रतिरोध भी कर रहे हैं तो स्वाभाविक है कि मन निस्तेज, ऊर्जाहीन हो जाएगा, क्योंकि यह प्रतिरोध ऐसा ही है जैसे किसी इंजन को ब्रेक लगाकर चलाना। उस बेचारे इंजन की क्या दशा होगी? उसकी क्षमता मंद पड़ जाएगी, है कि नहीं? अगर आपने गाड़ी चलाई है, तो आप जानते होंगे कि क्या होता है; अगर आप लगातार ब्रेक लगाते

रहें – न केवल आप ब्रेक को अपितु इंजन को भी बेकार कर देंगे। आप बिल्कुल यही कर रहे होते हैं जब आप किसी कार्य का प्रतिरोध करते हैं। जबकि आप अगर अपने कार्य को स्वीकार कर लेते हैं और जितना संभव हो उसे बुद्धिमत्तापूर्वक और पूर्ण क्षमता के साथ करते हैं, तब क्या होता है? चूंकि अब आप प्रतिरोध नहीं कर रहे होते हैं, तो आपकी चेतना की अन्य परतें सक्रिय होती हैं; सिर्फ आपका चेतन मन कार्य में लगा होता है और आपका अवचेतन, आपके मन का अदृष्ट भाग संलग्न होता है उस सब में जिसमें कहीं अधिक जीवंतता, कहीं अधिक गहराई है। यद्यपि आप कार्य की ओर उन्मुख होते हैं, आपका अवचेतन व्याप्त हो सक्रिय रहता है।

अब अगर आप देखें, वास्तव में आपके दैनिक जीवन में क्या होता है? मान लें आपकी दिलचस्पी ईश्वर की खोज में, शांति प्राप्त करने में है। यही आपकी आंतरिक इच्छा है, इसी में आपकी सच्ची रुचि है, इसी में आपका चेतन और अवचेतन मन भी रत है : खुशी की खोज में, यथार्थ की खोज में, जीवन को सही ढंग से, खूबसूरती से, स्पष्टता से जीने में। लेकिन आपको जीविका अर्जित करनी है, क्योंकि अलग–थलग होकर जीने जैसा कुछ भी नहीं है : जो है, वह संबंध में ही है।

तो शांति में आपकी रुचि है, और चूंकि आपके रोज़मर्रा के कार्य उसमें विघ्न डालते हैं, आप उन कार्यों का प्रतिरोध करते हैं। आप कहते हैं कि काश मेरे पास सोचने के लिए, ध्यान करने के लिए, वायलिन या और जो कुछ भी हो, उसके लिए अधिक समय होता। जब आप ऐसा करते हैं, जब आप उस कार्य का, जिसे आपको करना ही है, प्रतिरोध भर करते हैं, तो ठीक वही प्रतिरोध आपके प्रयत्नों, चेष्टाओं की बरबादी है जिससे आपका मन ऊर्जाहीन, सुस्त हो जाता है। जबकि, अगर आप महसूस करें कि हम सबको विभिन्न प्रकार के कार्य संपादित करने हैं जिन्हें किया जाना ज़रूरी है – पत्र लिखना, बातें करना, गाय का गोबर हटाना, या और जो

भी – और इसलिए उसका प्रतिरोध न करते हुए आप यह कहें कि ''यह कार्य मुझे करना ही है'', तब आप उसे कर पाएंगे, इच्छापूर्वक और बिना किसी ऊब के। अगर कोई प्रतिरोध नहीं है, तो जिस क्षण वह कार्य समाप्त होगा, आप पाएंगे कि आपका मन शांत है; क्योंकि अवचेतन की, मन के भीतरी तहों की रुचि शांति में है, आप पाएंगे कि शांति आपके भीतर व्याप्त हो रही है। अब उस कार्य में जो कि रोज़मर्रा का है, जो अरुचिकर भी हो सकता है और यथार्थ की आपकी खोज में कोई विभाजन नहीं है : वह कार्य और आपकी वह खोज साथ–साथ सुचारु रूप से चल सकते हैं जब मन प्रतिरोध नहीं कर रहा होता, जब वह उस प्रतिरोध के चलते मंद, ऊर्जाहीन नहीं बनाया जा रहा होता। यह प्रतिरोध ही है जो शांति और कर्म के बीच विभेद पैदा करता है। प्रतिरोध किसी विचार, किसी धारणा पर टिका होता है, और प्रतिरोध से कर्म संपन्न नहीं हो पाता। और केवल कर्म ही है जो मुक्ति देता है, न कि कार्य का प्रतिरोध।

इसलिए यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि, मन ऊर्जाहीन बनाया जाता है प्रतिरोध से, निंदा से, दोषारोपण से, टालने–बचने से। जब कोई प्रतिरोध नहीं हो तो मन ऊर्जाहीन नहीं होता। जब कोई दोषारोपण, कोई निंदा नहीं है, तब यह सजीव, सक्रिय होता है। प्रतिरोध सिर्फ अलगाव है, और उस मनुष्य का मन, जो चेतन अथवा अचेतन रूप से लगातार अपने को अलग–थलग कर रहा है, इसी प्रतिरोध द्वारा निस्तेज, ऊर्जाहीन बनाया जा रहा होता है।

बंगलौर, 8 अगस्त 1948

अनुवाद : रूपम दुबे

तथ्य के साथ जीना

प्रश्न : क्या तथ्य उस मन से भिन्न है जो दखलंदाज़ी करता है?

कृष्णमूर्ति : यह महिला पूछ रही हैं, ''क्या तथ्य दखलंदाज़ी से अलग कुछ और है?'' आइये, इस पर गौर से सोचें। मैं कोई सर्वज्ञ नहीं हूं।

क्या तथ्य दखलंदाज़ी से, हस्तक्षेप से भिन्न है? क्या ये एक ही क्षेत्र में, एक ही तल पर नहीं हैं? क्या तथ्य मन का ही एक हिस्सा नहीं है? मैं ईर्ष्या करता हूं – यह मन का हिस्सा है। और वह भी मन का ही हिस्सा है जो कहता है, ''ईर्ष्यालु न हों, सदाचारी बनें, जो भी इसका मतलब हो; ईर्ष्या घृणा होती है, अतः आपको प्रेम करना चाहिए, इसलिए ईर्ष्या को मिटा डालें।'' क्या आप साथ में देख पा रहे हैं? मैं ईर्ष्यालु हूं और दखलंदाज़ी का ही एक पक्ष यह है कि मुझे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। ये दोनों एक ही क्षेत्र के अंतर्गत हैं, तथ्य मन की परिधि के बाहर नहीं है। यह मन के ही क्षेत्र में है और इसी तरह दखलंदाज़ी भी मन के क्षेत्र के भीतर ही है। लेकिन हमारे लिये तो दखलंदाज़ियां अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और ताकतवर हो गयी हैं और वे तथ्य के आड़े आती हैं। हमने दखलंदाज़ियों पर ज़्यादा ज़ोर दिया है, तथ्य पर नहीं।

अब, क्या यह संभव है कि हम इन दखलंदाज़ियों को अपना खेल खेलने ही न दें? मेरा कहना है कि ऐसा संभव है, लेकिन केवल तभी जब हम हस्तक्षेप के पूरे मुद्दे को समझ गये हों। तो सवाल यह है : एक तो तथ्य है, एक दखलंदाज़ी है और फिर उस दखलंदाज़ी को समझने का जतन है। तो अब यह तथ्य, यह दखलंदाज़ी और तथ्य का सामना करने के लिए इस दखलंदाज़ी को समझने की चाह – ये सब तभी उठते हैं जब मैं तथ्य का सामना

करना चाहता हूं। यदि मैं सारा वक्त दखलंदाज़ी को होने देता हूं, जैसा कि मैं हमेशा करता रहा हूं, तो फिर वहां तथ्य होता ही नहीं, और मैं दखलंदाज़ियों के साथ जी रहा होता हूं।

मेरा कहना यह है : तथ्य का सामना करें, हस्तक्षेपों को, दखलंदाज़ी को बीच में न आने दें, पर दखलंदाज़ी के प्रति सजग हो जाएं। तो यहां पर तीन सवाल हैं – तथ्य, दखलंदाज़ी और दखलंदाज़ी के प्रति सजगता। ये तीनों एक ही क्षेत्र में हैं। यह अलग–अलग तय खांचों में नहीं हैं, ये सभी एक ही क्षेत्र में, एक ही भूमि पर हैं। इसे देखें। कृपया इसे गौर से समझ लें। इसके साथ प्रयोग करें – यानी, इन सभी के प्रति संपूर्ण रूप से सजग रहें, तथ्य के प्रति सजग हों, दखलंदाज़ी के प्रति सजग हों और इसके प्रति भी सजग रहें कि यदि मन दखलंदाज़ी करता है तो तथ्य समझ में नहीं आएगा। पूरी तरह से इस सब के प्रति सजग हों, इसके महत्त्व के प्रति सजग, तब आप इन तीनों का अर्थ ग्रहण कर पाएंगे क्योंकि उस संपूर्ण सजगता की अवस्था में कोई विभाजन नहीं रहता। जैसा कि मैंने उस दिन स्पष्ट किया कि अवधान मे कोई विचलन नहीं होता। विचलन, ध्यान हटना केवल तब होता है जब एकाग्रता हो, क्योंकि एकाग्रता विशिष्टीकरण है, अलगाव है। तो उन तीनों के प्रति संपूर्ण रूप से सजग रहने का अर्थ है ऐसा अवधान जिसमें सीमाएं नहीं हैं।

तो मानसिक रूप से होता क्या है, जब आप तीनों के प्रति समग्रतः सजग होते हैं, जब इस संपूर्ण स्थिति की सजगता होती है – जिसमें तथ्य, दखलंदाज़ी और उस दखलंदाज़ी की समझ शामिल है, तब क्या घटित होता है?

राजघाट, 10 जनवरी 1962

अनुवाद : हेमा

कृष्णमूर्ति स्वयं से

सोमवार 28 फरवरी 1983

41,000 फीट की ऊंचाई पर एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप पर उड़ते हुए आपको सिवाय बर्फ के और कुछ दिखाई नहीं देता – मीलों बिछी हुई बर्फ, पर्वत–पहाड़ियां सभी बर्फ से ढके हुए, नदियां बर्फ से जमी हुईं। सारी धरती पर हिमाच्छादित पर्वत, पहाड़, नदियां बिखरी हुईं। काफी नीचे मैदान और खेत भी बर्फ से ढके हुए। ग्यारह घंटे की यह लंबी, थकाने वाली यात्रा थी। सारे यात्री बातचीत में खोये हुए थे। पीछे एक दम्पति बैठे थे जिनकी बातचीत कभी खत्म होने का नाम नहीं ले रही थी। उन वैभवशाली पर्वत शृंखलाओं से उनका कोई वास्ता नहीं था, बाकी यात्रियों से भी वे बेख़बर थे। साफ था कि वे अपनी समस्याओं, उलझनों एवं विचारों में डूबे थे। आखिरकार इस थकाने वाली नीरव यात्रा के बाद भयंकर सर्दी में पैसेफिक के एक शहर में उतरते हैं।

शोरगुल और गहमागहमी के बीच से गुज़रने के बाद आप उस कुरूप, असभ्य, बेतरतीबी से बिखरे, चिल्लाते शहर को और उन न ख़त्म होने वाली और तकरीबन एक–सा सामान बेचने वाली दुकानों को छोड़कर बाहर निकल आते हैं। ये सारी चीज़ें पीछे छूटती जाती हैं जब आप नीले प्रशांत महासागर के किनारे–किनारे पहाड़ियों में घूमती–फिरती हाइवे की खूबसूरत सड़क पर रफ्तार से आगे बढ़ते हैं। महासागर को पीछे छोड़ते हुए आप ग्रामीण अंचल में प्रवेश करते हैं और उन छोटी–छोटी शांत, एकांत और धरती की अद्‌भुत गरिमा से परिपूर्ण पहाड़ियों पर चक्कर काटते हुए घाटी में आ जाते हैं। पिछले साठ सालों से आपका इस जगह से नाता है और हर बार घाटी में प्रवेश करते हुए आप अचरज से भर उठते हैं। यह घाटी मनुष्य के स्पर्श से लगभग अछूती है, शांत है। यह

विशालकाय प्याले, घोंसले की तरह है। अब आप उस छोटे से गांव को पीछे छोड़ते हैं और नारंगी के बगीचों, उपवनों की कतारों से होते हुए 1,400 फीट की ऊंचाई पर पहुंच जाते हैं।

हवा में नारंगी की सुगंध घुली है, पूरी घाटी उस सुगंध में नहाई है। आपके मन और मस्तिष्क में, पूरी देह में वह सुगंध समा जाती है। तीन हफ्तों या इससे अधिक समय तक वातावरण में यह सुगंध छाई रहेगी और इस सुगंध में जीना अत्यंत असाधारण अनुभव होगा। इन पहाड़ों में नीरवता और गरिमा का एहसास होता है। और जब भी दृष्टि उन 6,000 फीट तक ऊंचे पर्वतों पर जाती है तो यह सोचकर हैरानी होती है कि धरती पर ऐसी जगह भी है। हर बार इस शांत–नीरव घाटी में आने पर एक अजब एकाकीपन और गहरे मौन का अनुभव होता है। ऐसा लगता है समय की रफ्तार धीमी होकर असीम विस्तार में फैल गयी हो।

मनुष्य घाटी को बिगाड़ने में लगा है फिर भी यह बची हुई है। उस सुबह पहाड़ियां अद्‌भुत रूप से सुंदर लग रही थीं। उनको आप मानों छू सकते थे। भव्यता और शाश्वतता का विराट बोध उनमें था। जिस घर में आप साठ सालों से रहते आये हैं उसमें आप निःशब्द प्रवेश करते हैं। वहां का वातावरण, वहां की हवा पावन है – यदि यह शब्द प्रयोग करने की अनुमति हो। आप यह महसूस कर सकते हैं, इसे लगभग छू सकते हैं। वर्षा ऋतु है और काफी बारिश हो चुकी है, सारी पहाड़ियों पर, उनके छोटे–छोटे मोड़ों पर हरियाली छायी है। सब कुछ हराभरा और समृद्धि से परिपूर्ण लग रहा है। धरती खुश होकर, खिलकर, अपने अस्तित्व के गहन व निःशब्द बोध के साथ मुस्करा रही है।

(आगंतुक) 'आपने ऐसा बार–बार कहा है कि मुक्त होने के लिए, उस चीज़ के बोध के लिए जो काल, विचार और कर्म से परे है मन या कहिये मस्ति क को अपने समस्त संचित ज्ञान से खाली होना पड़ेगा। आपने अपनी अधिकांश वार्ताओं में अलग–अलग ढंग

से यह बात कही है और मैं इसे अत्यंत कठिन पाता हूं; न केवल इसके विचार, इसकी गूढ़ता को ग्रहण कर पाना, बल्कि यदि मैं कह सकूं तो उस मौन रिक्तता के अनुभव को भी समझ पाना मेरे लिए दुष्कर है। मैं कभी भी इसे समझ नहीं पाया हूं। मैंने तमाम तरह की विधियां अपनाईं कि मन का यह शोरगुल बंद हो, लेकिन मन है कि हमेशा किसी न किसी चीज़ में उलझा रहता है और अपनी समस्याएं पैदा करता है। हम इन्हीं सब से घिरे रहते हैं। हमारी रोजमर्रा की ज़िंदगी यही है – नीरसता, बोरियत, बातें ही बातें और यह नहीं तो टेलीविज़न या कोई किताब। मन शायद हमेशा व्यस्तता की मांग करता है, एक चीज़ से दूसरी चीज़, एक जानकारी से दूसरी जानकारी, एक काम से दूसरे काम के बीच घूमते रहने की। इस तरह विचार अंतहीन रूप से सक्रिय बना रहता है।'

जैसा कि हमने कहा था कि किसी निश्चय के द्वारा, निर्णय के द्वारा विचार को नहीं रोका जा सकता, अथवा बहुत तीव्र इच्छा करने से उस मौन या शून्यता में नहीं पहुंचा जा सकता।

'मुझे उस चीज़ के लिए ईर्ष्या होती है जिसके बारे में मैं यह अनुभव करता हूं कि वह सत्य है और जिसे मैं पाना चाहता हूं, पर वह सदा मुझसे बचकर निकल जाती है, मेरी पकड़ में नहीं आती। मैं आपके पास अक्सर आता रहा हूं और इस बार भी आया हूं, आपसे बातचीत करने के लिए, आपसे पूछने के लिए कि क्यों मेरे दैनिक जीवन में, मेरे व्यावसायिक जीवन में स्थायित्व नहीं है, मौन की वह धीरता नहीं है। ऐसा क्यों है? मैं अपने आप से यह पूछकर देख चुका हूं कि मुझे क्या करना है। मुझे लगता है मैं अधिक कुछ नहीं कर सकता या यूं कहें कि उस चीज़ के बारे में कुछ नहीं कर सकता। लेकिन वह तो जान की आफत जैसी वहां खड़ी है। मैं उसे अकेला नहीं छोड़ सकता। अगर मैं उसे केवल एक बार अनुभव कर लूं तब उसकी स्मृति ही मेरा पोषण करती रहेगी, उसकी स्मृति से ही इस वाकई मूर्खतापूर्ण जीवन को एक अर्थ मिल जाएगा। मैं

आपके पास इस मसले पर जांचपड़ताल करने के लिए आया हूं – आखिर क्यों मन – या मस्तिष्क, यह शब्द शायद बेहतर है – ऐसी मांग करता है कि वह व्यस्त रहे, कहीं न कहीं उलझा रहे?'

– *कृष्णमूर्ति टु हिमसेल्फ,* ओहाय, 28 फरवरी 1983

अनुवाद : मुकेश

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

खंड –2

नयी हिंदी पुस्तकें

ध्यान : कृष्णमूर्ति की वार्ताओं तथा लेखन से संकलित संक्षिप्त उद्धरणों का यह क्लासिक संकलन ध्यान के बारे में उनकी अंतर्दृष्टियों का सार प्रस्तुत करता है। एक जगह वह कहते हैं : 'ध्यान जीवन की महानतम कलाओं में से एक है... यह कला संभवतः दूसरे से नहीं सीखी जा सकती, और यही इसका सौंदर्य है... जब आप स्वयं का निरीक्षण करते हुए अपने बारे में सीखते हैं, अर्थात किस तरह आप खाते–पीते हैं, किस ढंग से आप चलते–फिरते हैं, क्या बातचीत और गपशप करते हैं, आपका ईर्ष्या करना, नफरत करना – जब आप अपने भीतर और बाहर की इन सारी चीज़ों के प्रति सजग और सचेत होते हैं, बिना किसी काट–छांट के, तो यह ध्यान का ही अंग है।' प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली–6, पृष्ठ संख्या : 154, पुस्तक का मूल्य : 125 रुपये

आपको अपने जीवन में क्या करना है? : यह पुस्तक विशेषकर युवा वर्ग को शिक्षा तथा जीवन के विषय में कृष्णमूर्ति की विशद दृष्टि का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ढंग से परिचय कराती है। दैनंदिन जीवन से जुड़े ज्वलंत प्रश्नों का गहन अन्वेषण इस पुस्तक में मिलता है : ''जब आप असाधारण रूप से सुंदर ऐसा कुछ देखें जो जीवन और सौंदर्य से परिपूर्ण हो तब आप विचार को कभी न आने दें, क्योंकि ज्यों ही विचार उसे स्पर्श करेगा त्यों ही पुरातन होने के कारण वह इसे मनोसुख में बदल देगा, और तब इस सुख की मांग उठने लगेगी – अधिक और अधिक मात्रा में। और जब वह प्राप्त नहीं हो सकेगा तब द्वंद्व कूद पड़ेगा, भय आ डटेगा...''
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली–6
पृष्ठ संख्या : 220, पुस्तक का मूल्य : 175 रुपये

नये अंग्रेज़ी शीर्षक

नयी पुस्तकें

Don't Make a Problem of Anything : Discussions with J Krishnamurti; Pages: 286, Price: Rs 150/-

Facing a World in Crisis : What life teaches us in challenging times; Pages: 185, Price: Rs 120/-

Social Responsibility; Pages: 158, Price: Rs 120/-

Think on These Things (published previously as *This Matter of Culture)*; Pages: 267, Subsidized Price: Rs 50/-

नये डी.वी.डी.

The Cause of Conflict in Relationship: 1st Public Talk in Brockwood Park, England on 25 August 1984; Price: Rs 250/-

Seeing Fear as an Extraordinary Jewel: 2nd Public Talk in Brockwood Park, England on 26 August 1984; Price: Rs 250/-

Is It Possible to End All Sorrow? : 3rd Public Talk in Brockwood Park, England on 1 September 1984; Price: Rs 250/-

The Nature, Depth, and Beauty of Death : 4th Public Talk in Brockwood Park, England on 2 September 1984; Price: Rs 250/-

जे. कृष्णमूर्ति की वार्ताएं पहली बार MP3 में :

What is Life all About? : A series of 5 Public Talks in Amsterdam in 1968 Price: Rs 200/-

कृष्णमूर्ति की रचनाओं का हिंदी में अनुवाद

यदि आप जे. कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के हिंदी अनुवाद से जुड़ने के इच्छुक हैं और कम्प्यूटर पर सीधे हिंदी में अनुवाद कर सकते हैं तो हमें ईमेल के द्वारा इस पते पर संपर्क करें : tpcrajghat@gmail.com

हिंदी में उपलब्ध कृष्णमूर्ति की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

1. ज्ञात से मुक्ति	रु. 100.00
2. ध्यान	रु. 40.00
3. हिंसा से परे	रु. 90.00
4. गरुड़ की उड़ान	रु. 70.00
5. संस्कृति का प्रश्न	रु. 50.00
6. शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य	रु. 60.00
7. शिक्षा संवाद	रु. 75.00
8. स्कूलों के नाम पत्र	रु. 60.00
9. स्कूलों को पत्र, भाग–2	रु. 40.00
10. आमूल क्रांति की आवश्यकता	रु. 60.00
11. सुखी वही जो कुछ नहीं है	रु. 25.00
12. वाशिंगटन वार्ताएँ	रु. 25.00
13. अंतिम वार्ताएँ	रु. 70.00
14. सत्य एक पथहीन भूमि है	रु. 10.00
15. मृत्यु और उसके बाद	रु. 40.00
16. जीवन भाष्य–1	रु. 70.00
17. जीवन भाष्य–2	रु. 70.00
18. जीवन भाष्य–3	रु. 80.00
19. ईश्वर क्या है	रु. 125.00
20. शिक्षा क्या है	रु. 175.00
21. ध्यान (नया परिवर्धित संस्करण)	रु. 125.00
22. आपको अपने जीवन में क्या करना है?	रु. 175.00
23. प्रथम और अंतिम मुक्ति (द्विभाषी संस्करण)	रु. 500.00

जे. कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद्

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी–221001

ईमेलः kcentrevns@satyam.net.in फोनः 0542–2430289, 2430353

स्वामी 'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक राजेश दलाल द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस–1/208 के–1 नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ. प्र.) से प्रकाशित; संपादक : कृष्णनाथ